पञ्चदश अभ्यास

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य

संस्कृत में वाच्य तीन हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य सकर्मक धातुओं के रूप दो वाच्यों में होते हैं—कर्तृवाच्य में और कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं के रूप भी दो वाच्यों में होते हैं—कर्तृवाच्य में और भाव वाच्य में।

१. कर्तृवाच्य में कर्त्ता मुख्य होता है और क्रिया कर्त्ता के अनुसार चलती है कर्त्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया होती है, जैसा कि पिछले अभ्यासों में बताया गया है।

२. कर्मवाच्य में कर्म मुख्य होता है और कर्म के अनुसार ही क्रिया का पुरुष, वचन और लिंग होता है। कर्म वाच्य में कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा और क्रिया कर्म के अनुसार होती है।

३. भाववाच्य में कर्त्ता में तृतीया (कर्म नहीं होता) और क्रिया में प्रथम पुरुष का एक वचन ही होता है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ् और विधि लिङ्) धातु और प्रत्यय के बीच में 'य' लगजाता है (सार्वधातुके यक्) धातु का रूप सदा आत्मनेपद ही में चलता है। लृट् में 'य' नही लगता। धातु में 'य' लगाकर उसके रूप 'जायते' की भाँति होंगे। लृट् में 'स्यते' या 'इष्यते' लगेगा।

उदाहरण—

(पठ्) पठ्यते, पठ्यताम्, अपठ्यत, पठ्येत, पठिष्यते।
(गम्) गम्यते, गम्यताम्, अगम्यत, गम्येत, गमिष्यते।

कर्मवाच्य 'गम्'

लट्				लोट्		
गम्यते	गम्येते	गम्यन्ते	प्र०पु०	गम्यताम्	गम्येताम्	गम्यन्ताम्
गम्यसे	गम्येथे	गम्यध्वे	म०पु०	गम्यस्व	गम्येथाम्	गम्यध्वम्
गम्ये	गम्यावहे	गम्यामहे	उ०पु०	गम्यै	गम्यावहै	गम्यामहै

लृट्				लङ्		
गमिष्यते	गमिष्येते	गमिष्यन्ते	प्र०पु०	अगम्यत	अगम्येताम्	अगम्यन्त
गमिष्यसे	गमिष्येथे	गमिष्यध्वे	म०पु०	अगम्यथाः	अगम्येथाम्	अगम्यध्वम्
गमिष्ये	गमिष्यावहे	गमिष्यामहे	उ०पु०	अगम्ये	अगम्यावहि	अगम्यामहि

क्रिया दो प्रकार की होती है, एक सकर्मक और दूसरी अकर्मक। जिन क्रियाओं के कर्म हों उन्हें सकर्मक और जिन के कर्म न हों उन्हें अकर्मक कहते है। जिन क्रियाओं में व्यापार और फल अलग-अलग रहें उन्हें सकर्मक और जिन में व्यापार और फल एक ही में रहें उन्हें अकर्मक कहते हैं, यथा—सकर्मक, 'बालः चन्द्रं पश्यति' इस वाक्य में 'पश्यति' क्रिया का व्यापार 'बाल' में है और 'पश्यति', क्रिया का फल 'चन्द्र' में। अकर्मक-'शिशुः शेते'। इस वाक्य में सोने का काम और सोना दोनों ही काम शिशु में हैं।

कर्मवाच्य की कुछ क्रियाएँ	भाववाच्य की कुछ क्रियाएँ
ग्रह्—(लेना)—गृह्यते	अस्—होना—भूयते
प्रच्छ्—(पूछना)—पृच्छ्यते	जागृ—(उठना)—जागर्य्यते
वच्—(कहना) उच्यते	शी—(सोना)—शय्यते
पॄ—(भरना)—पूर्यते	वस्—(रहना)—उष्यते
पठ्—(पढ़ना)—पठ्यते	मस्ज्—(डूबना)—मज्ज्यते
श्रु—(सुनना)—श्रूयते	स्मृ—(याद करना)—स्मर्य्यते
कथ्—(कहना)—कथ्यते	हस्—(हँसना)—हस्यते
पा—(पीना)—पीयते	स्था—(ठहरना)—स्थीयते
नी—(ले जाना)—नीयते	भी—(डरना)—भीयते

संस्कृत में अनुवाद करो--

१—मैंने उसको देखा—मुझसे वह देखा गया। २—रमेश क्यों नहीं पढ़ता है ? रमेश से क्यों नहीं पढ़ा जाता ? ३—तुम गुरु की आज्ञा क्यों नहीं मानते ? ४—क्या तुम से यह पुस्तक नहीं पढ़ी जाती ? ५—बिल्ली चूहे का पीछा करती है। ६—सज्जन सबसे आदर पाते हैं। ७—काम किस से किया जाता है ? ८—मुझ से नहीं ठहरा जाता। ९—तुम क्यों रोते हो ? १०—वह क्या जानता है ? ११—ऐसा सुना जाता है। १२—लोभ से क्रोध पैदा होता है। १३—उससे पुस्तकें क्यों नहीं पढ़ी जातीं ? १४—क्या शिशु सो गया ? १५—साधु अपने से बड़ों की सेवा करते हैं।

षोडश अभ्यास

वाच्यपरिवर्तन

कर्तृवाच्य की क्रिया यदि सकर्मक हो तो कर्मवाच्य में और यदि अकर्मक हो तो भाववाच्य में बदल दी जाती हैं, तथा कर्म अथवा भाववावच्य की क्रियाएँ कर्तृवाच्य में बदली जा सकती हैं, यथा—स ग्रामं गच्छति (कर्तृ०) तेन ग्रामः गम्यते (कर्म०)। स रोदिति (कर्तृ०) तेन रुद्यते (भाव०)। इसी प्रकार कर्म वाच्य या भाववाच्य उलटने से कर्तृवाच्य में हो जायँगे।

वाच्यपरिवर्तन करते समय क्रिया, उसका कर्त्ता, कर्त्ता के विशेषण कर्म और कर्म के विशेषण, इन सभी में परिवर्तन होता है, यथा—सुशीलः बालः स्वकीयं पाठं पठति (कर्तृ०) सुशीलेन बालेन स्वकीयः पाठः पठ्यते (कर्म०)—(सुशील बालक अपना पाठ पढ़ता है)। इस वाक्य में कर्ता, कर्म, उनके विशेषण और क्रिया में परिवर्तन हुआ है।

वाच्यपरिवर्तन करते समय इन बातों पर विचार करो—

१—पहले कर्ता, कर्म और क्रिया ढूंढ़ो।

२—फिर कर्ता और कर्म के विशेषणों को देखो।

३—फिर देखो कि क्रिया किस वाच्य की है।

४—क्रिया देख कर वाच्य स्थिर करो। [कृत्य प्रत्ययान्त (तव्य, अनीय, यत्) की क्रिया कर्तृवाच्य में कभी नहीं होती।]

जब कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में क्रिया का एक ही प्रकार का रूप हो [जैसे, 'स ग्रामः गतः' (कर्तृ०) तेन ग्रामः गतः' (कर्म०)] तब कर्ता और कर्म को देख कर वाच्य स्थिर करो।

५—कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा हो तो वाक्य कर्मवाच्य या भाववाच्य में है और यदि कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया होतो वाक्य कर्तृवाच्य में है।

६—क्रिया जिस काल या जिस लकार की होगी वाच्यान्तर में भी वह उसी काल और उसी लकार की होगी। जैसे—स उक्तवान् (कर्तृ०) तेन उक्तम् (कर्म०)। सा गच्छति (कर्तृ०) तया गम्यते (कर्म०)।

७—कर्ता या कर्म का जो विशेषण होगा उसमें वही विभक्ति और वचन होंगे जो कर्ता और कर्म के होंगे, यथा—शयानाः भुञ्जते मूर्खाः (कर्तृ०) शयानैः मूर्खैः भुज्यते (मूर्ख सोये-सोये खाते हैं)।

वाच्यान्तररचना

कर्मवाच्य बनाने में प्रथमान्त कर्त्ता को तृतीयान्त और द्वितीयान्त कर्म को प्रथमान्त कर देना पड़ता है। और कर्तृवाच्य में जो क्रिया कर्त्ता के अनुसार होती है वह कर्म के अनुसार बना देनी पड़ती है, यथा—अहं शिशुं पश्यामि (कर्तृ०) मया शिशुः दृश्यते (कर्म०)—मैं बच्चे को देखता हूँ।

कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य क्त प्रत्यय द्वारा भी बनाये जाते हैं, यथा—अहं सिंहम् अपश्यम्। (कर्तृ०) मया सिंहो दृष्टः (कर्म०)।

कृत् प्रत्ययान्त क्रियापद विशेषण के समान व्यवहृत होते हैं। उनसे कर्त्ता और कर्म में जो लिङ्ग, वचन और कारक होते हैं वे ही उन में भी होते हैं। जैसे—सा कथितवती। त्वया ग्रन्थः पठितः। तेन ग्रामो गन्तव्यः इत्यादि।

कर्तृवाच्य क्तवतु प्रत्ययान्त क्रिया को कर्मवाच्य या भाववाच्य में क्त प्रत्ययान्त कर देते हैं। यथा—पाण्डवा वनं गतवन्तः (कर्तृ०) पाण्डवैः वनं गतम् (कर्म०) (पाण्डव वन में गये।) अहं प्रस्थितवान् (कर्तृ०) मया प्रस्थितम् (भाव०) (मैंने यात्रा की।)

कर्तृवाच्य क्त प्रत्ययान्त क्रिया को कर्मवाच्य, या भाववाच्य बनाने में केवल विभक्ति बदलनी पड़ती है अर्थात् कर्त्ता में प्रथमा के स्थान पर तृतीया और कर्म में द्वितीया के स्थान पर कर्म के अनुसार प्रथमा और क्रिया कर्म के अनुसार होती है, यथा—स काशी-गतः (कर्तृ०)। तेन काशी गता (कर्म०)।

द्विकर्मक धातु का वाच्यान्तर

(गौणे कर्मणि दुह्यादेः) द्विकर्मक धातु से कर्मवाच्य बनाने में दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मन्थ्, मुष्, धातुओं के गौण कर्म (Indirect object) में प्रथमा विभक्ति होती है और क्रिया उसी कर्म के अनुसार होती है; मुख्य कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा—गोपः गां दुग्धं दोग्धि (कर्तृ०) गोपेन गौः दुग्धं दुह्यते (कर्म०)। छात्रः गुरुं धर्मं पृच्छति (कर्तृ०) छात्रेण गुरुः धर्मं पृच्छ्यते (कर्म०)। यहाँ पर 'गाम्' तथा 'गुरुम्' गौण कर्म हैं।

(प्रधाने नीहृकृष्वहाम्) द्विकर्मक नी, हृ, कृष् और वह् धातुओं के मुख्य कर्म (Direct object) में प्रथमा विभक्ति होती है, गौण कर्म ज्यों का त्यों रहता है, यथा, कर्मकरः भारान् गृहं वक्ष्यति। (कर्त०) कर्मकरेण भाराः गृहं वक्ष्यन्ते (कर्म०) (मजदूर बोझ घर ले जायगा।)

णिजन्त द्विकर्मक धातु का वाच्यान्तर

(बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया) बुद्ध्यर्थक, भक्षार्थक और शब्दकर्मक धातुओं के दोनों कर्मों में से जिसमें इच्छा हो उसमें प्रथमा विभक्ति होती है, यथा—गुरुः छात्रं धर्मं बोधयति (कर्तृ०) गुरुणा छात्रः धर्मं बोध्यते, (अथवा) गुरुणा छात्रं धर्मः बोध्यते।

अन्य णिजन्त द्विकर्मक धातुओं के कर्मवाच्य बनाने में प्रयोज्य कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, यथा—गोविन्दो भृत्यं ग्रामं गमयति (कर्तृ०) गोविन्देन भृत्यः ग्रामं गम्यते (कर्म०) (गोविन्द नौकर को गाँव भेज रहा है)।

कर्तृवाच्य में जिन धातुओं के प्रयोज्य कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है कर्मवाच्य में उनके अणिजन्त अवस्था के कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, यथा—श्रीकृष्णः पार्थेन जयद्रथं घातयति (श्रीकृष्ण अर्जुन से जयद्रथ को मरवाता है) (श्री कृष्णेन पार्थेन जयद्रथः घात्यते (कर्म०) श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन से जयद्रथ मरवाया जाता है।

हिन्दी में अनुवाद और वाच्य परिवर्तन भी करो—

१—सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्धबी। २—जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्। ३—अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा। ४—मृत्योर्बिभेषि किं मूढ न स भीतं विमुञ्चति। ५—न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः। ६—तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः। ७—किं तया क्रियते धेन्वा मा न सूते न दुग्धदा। ८—न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्छति मारुतस्य। ९—भूषणाद्युपचारेण प्रभुर्भवति न प्रभुः। १०—स बाल आसीद्वृषा चतुर्भजः। ११—प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्। १२—पूर्वस्मादन्यवद्भाति भावाद्दाशरथिं स्तुवन्। १३—परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः। १४—सा सीतामङ्कमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम्।

मामेति व्याहरत्येव तस्मिन् पातालमभ्यगात्। १५—नोलूको प्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।

सप्तदश अभ्यास

सोपसर्गक धातुएँ

क्रिया के साथ भिन्न-भिन्न उपसर्गों के लगने से भिन्न-भिन्न अर्थों का ज्ञान होता है। उपसर्गों के साथ धातु के योग से वाक्य में सौष्ठव और चमत्कृति आजाती है और साधारण धातुओं के प्रयोग की अपेक्षा भाषा मँझी हुई और परिष्कृत लगती है। साथ ही साथ छात्र धातुओं के अर्थ और रूपावली को कण्ठस्थ करने के परिश्रम से बच जाते हैं। उदाहरणार्थ—हृ धातु को लीजिए जिसका अर्थ "हरण करना" है। उस पर "प्र" उपसर्ग लगने से उसका अर्थ 'प्रहार कराना' हो जाता है "आ" उपसर्ग लगने से उसका अर्थ 'भोजन करना' हो जाता है। अतः कहा गया है—

"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नेयते।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत्॥"

उपसर्गों के लगाने से धातुओं के अर्थों में एक और विलक्षणता यह आ जाती है कि कहीं कहीं अकर्मक धातुएँ भी सकर्मक हो जाती हैं, यथा—अकर्मक 'भू' का अर्थ (होना) है, मगर 'अनु' उपसर्ग लगाने से इसका अर्थ 'अनुभव करना' सकर्मक हो जाता है। जैसे—पापी दुःखमनुभवति (पापी दुःख भोगता है)।

अय् (जाना) परा+अय् (भागना) अश्वारोहः पलायते।

अर्थ (मांगना) प्र+अर्थ (प्रार्थना करना) स्वर्गीति प्रार्थयन्ते (भ० गीतायाम्)

अभि+अर्थ (इच्छा करना) यदि सा तापसकन्यका अभ्यर्थनीया (शाकुन्तले)।

अभि+अर्थ (प्रार्थना करना) माम् अनभ्यर्थनीयमभ्यर्थयते (मालविकाग्निमित्रे)

अस् (फेंकना)—अभि+अस् (रटना) छात्रः पाठमभ्यस्यति।

निर्+अस् (हटाना) सः धूर्तं निरस्यति।

आप् (पाना)—

वि+आप् (फैलना) रजः आकाशं व्याप्नोति।

सम्+आप् (पूरा होना) यावत्तेषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः (रघुवंशे)।

आस् (बैठना)—

अधि+आस् (बैठना) स राजसिंहासनमध्यास्ते।

उप+आस् (पूजा करना) भक्ताः शिवमुपासते।

अनु+आस् (सेवा करना) सखीभ्यामन्वास्यते। (शाकुन्तले)।

इ (जाना)—

अव+इ (जानना) अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः (रघुवंशे)।

प्रति+इ (विश्वास करना) सः मयि न प्रत्येति।

उत्+इ (उगना) उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।

उप+इ (प्राप्त करना) उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (पञ्चतन्त्रे)।

अभि+इ (सामने आना) सः स्वामिनमभ्येति।

अनु+इ (पीछे जाना) स शब्दार्थ इव तमन्वेति।

अप+इ (दूर होना) सूर्योदये अन्धकारः अपेति।

अभि+उप+इ (प्राप्त होना) व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वाम्प्रार्थिभावादिति मे विषादः (रघुवंशे)।

ईक्ष् (देखना)—

अप+ईक्ष् (प्रतिज्ञा करना) किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः ?

उप+ईक्ष् (खयाल न करना) अलसः कर्तव्यमुपेक्षते।

परि+ईक्ष् (परीक्षा लेना) अग्नौ परीक्ष्यते स्वर्णं काव्यं सदसि तद्विदाम्।

प्रति+ईक्ष् (इन्तजार करना) क्षणं प्रतीक्षस्व।

निः+ईक्ष् (देखना) स साग्रहं त्वां निरैक्षत।

अव+ईक्ष् (रक्षा करना) श्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम् (उत्तररामच०)।

अव+ईक्ष् (आदर करना) त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य माम् (रघुवंशे)।

अव+ईक्ष् (जांच करना) स कदाचिदवेक्षितप्रजः (रघुवंशे)।

कृ (करना)—

अनु+कृ (नकल करना) भारतवर्षीया दासवदन्वकुर्वन्आङ्ग्लानाँ भाषां, चर्यां, परिकर्म च।

अधि+कृ (अधिकार करना) ते नाम जयिनो ये शरीरस्थान् रिपूनधिकुर्वते।

अप+कृ (बुराई करना) अथवा सैनिकाः केचिदपकुर्युर्युधिष्ठिरम् (महाभारते)।

तिरस्+कृ (अनादर करना) किमर्थं तिरस्करोषि माम् ?
नमस्+कृ (नमस्कार करना) देवदेवं नमस्कुरु ।
प्रति+कृ (इलाज करना) आगतं तु भयं वीक्ष्य प्रतिकुर्याद् यथोचितम् ।
उप+कृ (उपकार करना) किं ते भूयः प्रियमुपकरोतु पाकशासनः ? (विक्रमो०
वि+कृ (विकार पैदा करना) चित्तं विकरोति कामः ।
परि+ष्कृ (सजाना) रथो हेमपरिष्कृतः (महाभारते) ।
अलम्+कृ (शोभा बढ़ाना) रामचन्द्रः वनमिदं पुनरलङ्करिष्यति ?
आविः+कृ (ढूँढना) वायुयानमिदं केन धीमताऽऽविष्कृतं भुवि ।
निर्+आ+कृ (हटाना) स निराकरोति दोषान् ।

च्विप्रत्ययान्त कृ—

१—अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।
२—वीरवरः देव्यै स्वपुत्रमुपहारीकरोति ।
३—सफलीकृतं भवता मम जीवनं शुभागमनेन ।
४—स्थिरीकरोमि ते वासस्थानम् ।
५—कदा रामभद्रो वनमिदं सनाथीकरिष्यति ?
६—विरहकथा आकुलीकरोति मे हृदयम् ।

गम् (जाना)—काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् (हितोपदेशे)
अनु+गम् (पीछा करना) वत्स मामनुगच्छ ।
अव+गम् (जानना) नावगच्छामि ते मतिम् ।
अधि+गम (प्राप्त करना) अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ।
(मालविकाग्निमित्रे)
अभि+उप+गम् (स्वीकार होना) अपीमं प्रस्तावमभ्युपगच्छसि ?
अभि+आ+गम् (आना) अस्मद् गृहानद्यैकोऽभ्यागतोऽभ्यागमत् ।
आ+गम् (आना) स्नानार्थं स नदीमागच्छत् ।
प्रति+गम् (लौटना) कदा सा प्रतिगमिष्यति ?
प्रति+आ+गम् (लौटना) माणवकः कुटीरं प्रत्यागच्छति ।

निर्+गम् (बाहर जाना) स गृहान्निर्गतः ।

सम्+गम् (मिलना) (क) संगत्य कलं क्वणन्ति पक्षिणः ।

(ख) प्रयागे यमुना गङ्गां संगच्छति ।

उत्+गम् (उड़ना) पक्षी आकाशमदगच्छत् ।

प्रति+उद्+गम् (अगवानी के लिए जाना) लङ्का तो निवर्तमानं श्रीरामं भरतः प्र त्युज्जगाम

ग्रह् (लेना)

नि+ग्रह् (दंड देना) शीघ्रमयं दुष्टवणिक् निगृह्यताम् ।

अनु+ग्रह् (कृपा करना) गुरो मामनुगृहाण ।

वि+ग्रह् (लड़ाई करना) विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः (शिशुपालवधे) ।

प्रति+ग्रह् (स्वीकार करना) तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः ।

आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ॥ (रघुवंशे) ।

चर् (चलना)—

अति+चर् (विरुद्ध आचरण करना) पुत्राःपितृनत्यचरन् नार्यश्चात्यचरन् पतीन् ।

आ+चर् (व्यवहार करना) प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।

अनु+चर् (पीछा करना) सत्यमार्गमनुचरेत् ।

उत्+चर् (कहना) स धर्मोपदेशं नोच्चरते ।

परि+चर् (सेवा करना) भृत्याः स्वामिनं परिचरन्ति ।

सम्+चर् (आना-जाना) भूयांसो जना मार्गेणानेन संचरन्ते ।

प्र+चर् (प्रचार होना) यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

उप+चर् (सेवा करना) पार्वती अहोरात्रं शिवमुपचचार ।

चि (चुनना)—

उप+चि (बढ़ाना) अधोधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते (हितोपदेशे) ।

अप+चि (घटना) राजहंस तव सैव शुभ्रता चीयते न च नचापचीयते ।

अव+चि (चुनना) सा उद्याने प्रतानिनीभ्यो बहूनि कुसुमान्यवाचिनोत् ।

निस्+चि (निश्चय करना) वयं निश्चिनुमः न वयं विश्रमिष्यामो यावन्न स्वातन्त्र्यं प्रतिलभामह इति ।

अभि+उद्+चि (इकट्ठा होना) अभ्युच्चितास्तर्काः प्रभावुका भवन्ति ।
आ+चि (बिछाना) भृत्यः शय्यां प्रच्छदेनाचिनोति ।
उप+चि (बढ़ाना) मांसाशिनो मांसमेवोपचिन्वन्ति न प्रज्ञाम् ।
वि+नि+चि (निश्चय करना) विनिश्चेतुं शक्ये न सुखमिति वा दुःखमिति वा ।
सम्+चि (इकट्ठा करना) रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति । (शाकु०)
प्र+चि (पुष्ट होना) स पुष्टिप्रदमन्नं भुङ्क्ते तस्मात्प्रचीयन्ते तस्य गात्राणि ।

ज्ञा (जानना)—
अनु+ज्ञा (आज्ञा देना) तत् अनुजानीहि मां गमनाय (उत्तररामचरिते) ।
प्रति+ज्ञा (प्रतिज्ञा करना) कथं वृथा प्रतिजानीषे ।
अव+ज्ञा (अनादर करना) अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति ।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा ॥ (रघुवंशे) ।
अप+ज्ञा (झुठाना) शतमपजानीते ।

तॄ (तैरना)—
अव+तॄ (उतारना) अवतरति आकाशात् वायुयानम् ।
उत्+तॄ (तैरना) स अनायासं गङ्गामुदतरत ।
वि+तॄ (देना) वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्याम् (उत्तररामचरिते) ।
सम्+तॄ (तैरना) स हि घटिकाप्रायं नद्यां सन्तरेत् ।

दिश् (देना)—
आ+दिश् (आज्ञा देना) गुरुः शिष्यान् आदिशति ।
उप+दिश् (उपदेश देना) उपदिशतु मां धर्मशास्त्रम् ।
सम्+दिश् (संदेश देना) किं संदिशतु स्वामी ?
निर्+दिश् (बताना) यथाभिलषितं स्थानं निर्दिशेत् ।

दा (देना)
आ+दा (स्वीकार करना) नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।
(रघुवंशे)
आ+दा (कहना आरम्भ करना) अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतांवरः । (रघुवंशे)

धा (धारण करना)—
अभि+धा (कहना) पयोऽपि शौण्डिकीहस्ते वारुणीत्यभिधीयते (हितोपदेशे) ।

अपि+धा (बंदकरना) द्वारं पिधेहि अतिकालमागतास्ते मा । विक्षन्निति ।

अव+धा (ध्यान देना) गोपालः पठने नावधत्ते ।

सम्+धा (सन्धि करना) बलीयसा शत्रुणा संदध्यात् विगृह्णानो हि ध्रुवमुत्सीदेत् ।

वि+धा (करना) सहसा विदधीत न क्रियाम् (किराते) ।

वि+परि+धा (बदलना) विपरिधेहि वासांसि मलिनानि तानि जातानि ।

आ+धा (गिरवी रखना) धनमिच्छामि, तन्मया साधवे स्वं गृहमाधातव्यम्भविष्यति ।

परि+धा (पहनना) उत्सवे नरः नवं वस्त्रं परिदधाति ।

नि+धा (विश्वास रखना) निदधे विजयाशंसां चापे सीतां च लक्ष्मणे (रघु०)।

नि+धा (नीचे बैठना) सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ (घटकारिकाख्ये) ।

नि+धा (अमानत रखना) काशीं गच्छामि, अवशिष्टं धनं विश्वास्ये ग्रामवणिजि निधास्यामि ।

नी (ले जाना)—

अनु+नी (मनाना) अनुनय मित्रं कुपितम् ।

अभि+नी (अभिनय करना) गोपालः सीतायाः पाठमभिनयेत् ।

आ+नी (लाना) आनय जलं पूजार्थम् ।

उप+नी (लाना) उपनयति मुनिकुमारकेभ्यः फलानि (कादम्बर्याम्)

उप+नी (यज्ञोपवीत देना) गुरुः शिष्यमुपानयत् ।

उप+नी (पास में लाना) उपनय रथं यावदारोहामि ।

उप+आ+नी (समर्पण करना) स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य (रघुवंशे) ।

परि+नी (व्याह करना) नलो दमयन्तीं परिणिनाय ।

प्र+णी (बनाना) वाल्मीकिः रामायणं प्रणिनाय ।

वि+अप+नी (दूर करना) सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः ।

अप+नी (हटाना) अपनेष्यामि ते दर्पम् ।

उद्+नी (ऊँचा उठाना) अवदातेनानेन चरितेन कुलमुन्नेष्यसि ।

निर्+नी (निर्णय करना) कलहस्य मूलं निर्णयति ।

पत् (गिरना)—

आ+पत् (आ पड़ना) अहो, कष्टमापतितम् !

उत्+पत् (उड़ना) प्रभाते पक्षिणः उत्पतन्ति ।

प्र+नि+पत् (प्रणाम करना) उपाध्यायचरणयोः प्रणिपतति शिष्यः ।

नि+पत् (गिरना) क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम् ।

सम्+नी+पत् (इकट्ठा होना) नाना देशस्था नयज्ञा इह संनिपतिष्यन्ति ।

सम्+नी+पत् (टूट पड़ना) अभिमन्युः शत्रुसैन्ये संन्यपतत्, शतधा च तद् व्यदलयत् ।

वि+नि+पत् (पतन होना) विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।

पद् (जाना)—

प्र+पद् (भजना) ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् (गीतायाम्) ।

उत्+पद् (उत्पन्न होना) दुग्धात् नवनीतम् उत्पद्यते ।

वि+पद् (विपद् में पड़ना) स विपद्यते (विपन्नो भवति) ।

उप+पद् (योग्य होना) नैतत् त्वय्युपपद्यते (गीतायाम्) ।

भू (होना)—

अनु+भू (अनुभव करना) सन्तः सुखम् अनुभवन्ति ।

आवि+भू (निकलना) आविर्भूते शशिनि तमो विलीयते ।

अभि+भू (तिरस्कार करना) कस्त्वामभिभवितुमिच्छति बलात् ?

परा+भू (हराना) बलवान् दुर्बलान् पराभवति ।

प्रादुः+भू (पैदा होना) प्रादुर्भवति भगवान् विपदि ।

परि+भू (तिरस्कार करना) रावणः विभीषणं परिबभूव ।

प्र+भू (समर्थ होना) प्रभवति शुचिर्विम्बोद्ग्राहे मणिः (उत्तररामचरिते) ।

कुसुमान्यपि गात्रसंगमात् प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ॥ (रघुवंशे)

प्र+भू (निकलना) हिमवतो गङ्गा प्रभवति ।

सम्+भू (पैदा होना) सम्भवामि युगे युगे (गीतायाम्) ।

सम्+भू (मिलना) सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा । (शिशु०)

अनु+भू (मालूम करना) अनुभवामि एतत् ।

वि+भावि (देखना) नाहं ते तर्के दोषं विभावयामि।

परि+भावि (विचार करना) गुरोर्भाषितं मुहुर्मुहुः परिभावय।

क्विप्रत्ययान्त भू के प्रयोग—

१—भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?

२—दृढीभवति शरीरं व्यायामेन।

३—भवतां शुभागमनेन पवित्रीभूतं मे गृहम।

४—तपसा भगवान् प्रत्यक्षीभवति।

विश् (प्रवेश करना)—

अभि+नि+विश् (सम्मिलित होना) छात्रः पाठम् अभिनिविशते।

उप+विश् (बैठना) आसन उपविशतु भवान्।

प्र+विश् (प्रवेश करना) संन्यासी वनान्तरं प्राविशत्

मन् (सोचना)—

अव+मन् (अनादर करना) नावमन्येत निर्धनम्।

अनु+मन् (आज्ञा या सलाह देना) राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने (रघुवंशे)।

सम्+मन् (आदर करना) कच्चिदग्निमिवानाढ्यं काले संमन्यसेऽतिथिम्।
(भट्टिकाव्ये)।

मन्त्र् (सलाह करना)—

अभि+मन्त्र् (संस्कार करना) जलम् अभिमन्त्र्य ददौ।

आ+मन्त्र् (विदा होना) तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्र्ये।
(शाकुन्तले)

आ+मन्त्र् (बुलाना) आमन्त्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान् (महाभारते)।

नि+मन्त्र् (न्यौता देना) ब्राह्मणान् निमन्त्रस्व।

रम् (क्रीडा करना)—

वि+रम् (हटाना) विरम विरम पापात्।

उप+रम् (मरना) स शोकेन उपरतः।

उप+रम् (लगाना) यत्रोपरमते चित्तम् (भगवद्गीतायाम्)।

वद् (कहना)—

अप+वद् (निन्दा करना) दुर्जनः सज्जनमपवदति।

लोकापवादो बलवान् मतो मे (रघुवंशे)।

वि+वद् (झगड़ा करना) कृषकाः क्षेत्रे विवदन्ते ।
अनु+वद् (अनुवाद करना) स विद्वान् वेदमनुवदति ।
प्रति+वद् (उत्तर देना) तान् प्रत्यवादीदथ राघ ोऽपि ।

लप् (बोलना)—
अप+लप् (छिपाना) दुष्टः सत्यमपलपति ।
आ+लप् (बातचीत करना) साधुः साधुना सह आलपत् ।
प्र+लप् (बकवाद करना) उन्मत्ताः सदा प्रलपन्ति ।
वि+लप् (रोना) विललाप स वाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् (रघुवंशे) ।
सम्+लप् (बातचीत करना) संलापितानां मधुरैः वचोभिः ।

वह् (ले जाना)—
उद्+वह् (व्याह करना) इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञा-
मुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः (रघुवंशे) ।
अति+वह् (बिताना) किं वा मयापि न दिनान्यतिवाहितानि (माल ीमाधवे)।
आ+वह् (पैदा करना) महदपि राज्यं सुखं नावहति ।
आ+वह्—(पहनना) मण्डनमावहन्तीम् (चौरपञ्चासिकायाम्) ।
आ+वह्—(धारण करना) मा रोदीर्धैर्यमावह (मार्कण्डेयपुराणे) ।
निः+वह् (चलाना) स कार्यमेतत् निर्वहति ।
प्र+वह् (वहना) अनेन मार्गेण गङ्गा प्रावहत् ।

वृत् (होना)—
अनु+वृत् (अनुसरण करना) साधवः साधुमनुवर्तन्ते ।
आ+वृत् (वापस आना) अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुरावृते वनात् (रघुवंशे) ।
आ+वृत्+णिच् (माला फेरना) अक्षवलयमावर्तयन्तं तापसकुमारमदर्शम् ।
परि+वृत् (घूमना) चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।
प्र+वृत् (प्रवृत्त होना) प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः ।
नि+वृत् (रुकना) प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् (मनुस्मृतौ) ।
नि+वृत् (लौटना) न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयम् (शाकु०)
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम (भ० गीतायाम्) ।
प्रति+आ+वृत् (लौटना) अचिरं स प्रत्यावर्तिष्यते ।

प्र+वृत् (लगाना) प्रवर्त्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः (शाकुन्तले)।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे ? (कुमारसंभवे)।
प्र+वृत् (शुरू होना) ततः प्रववृते युद्धम्।
परि+वृत् (घूमना) चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।

वस् (रहना)—
अधि+वस् (रहना) रामः अयोध्यामध्यवसत्।
उप+वस (उपवास करना) स एकादश्यामुपवसति।
,, ,, (समीप रहना) ब्राह्मणः ग्रामम् उपवसति।
नि+वस् (रहना) स कुत्र निवसति ?
प्र+वस् (परदेश में रहना) विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः (मनु०)।

सद् (जाना)—
अव+सद् (हिम्मत हारना) प्रतिहतप्रयत्नाः क्षुद्रमनसा अवसीदन्ति।
उत्+सद् (नाश होना) उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्मचेदहम्।
उत्+सद्+णिच् (नष्ट करना) अयमसत्येऽभिनिवेशो नियतमुत्सादयिष्यति वः।
आ+सद् (पाना) पान्थः कूपमेकमाससाद।
प्र+सद् (प्रसन्न होना) प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वम् (दुर्गासप्तशत्याम्)।
वि+सद् (दुखी होना) यूयं मा विषीदत।
नि+सद् (बैठना) यल्लघु तदुत्प्लवते यद् गुरु तन्निषीदति।
उप+सद् (सेवा में जाना) उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् चिरं ततो व्याकरणमधिजग्मिवान्।
प्रति+आ+सद् (अति समीप आना) प्रत्यासीदति परीक्षा, त्वं च पाठेऽनवहितः।

सृ (जाना)—
अप+सृ (हटना) इतो दूरमपसर।
निः+सृ (निकलना) क्षतात् रक्तं निःसरति।
अनु+सृ (पीछा करना) वनं यावदनुसरति।
प्र+सृ (फैलना) प्रससार यशस्तव।
अभि+सृ (पति के पास जाना) सा अभिसरति।

स्था (ठहरना)—
अधि+स्था (रहना) साधवः साधुतामधितिष्ठन्ति।

अनु+स्था (करना) मनसापि पापकार्यं नानुतिष्ठेत् ।
अव+स्था (ठहरना) भगवन् ! नावतिष्ठतामत्र ।
उत्+स्था (उठना) उत्तिष्ठोतिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते !
प्र+स्था (रवाना होना) प्रीतः प्रतस्थे मुनिराश्रमाय ।
उप+स्था (आना) भोजनकाल उपतिष्ठसे कार्यकाले क्व यासि ?
उप+स्था (पूजा करना) स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती (रघुवंशे) ।

हृ (चुरा ले जाना)—

अनु+हृ (नकल करना) पैतृकमश्वा गतमनुहरन्ते ।
अप+हृ (चुराना) चौरः धनमपहरति ।
अप+हृ (दूर करना) अपहृिये खलु परिश्रमजनितया निद्रया (उत्तररा०) ।
आ+हृ (लाना) वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्त्रो दश चाहरेति ।
(रघुवंशे) ।
उत्+हृ (उद्धार करना) मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या (विक्रमोर्वशीये) ।
उत्+आ+हृ (उदाहरण देना) त्वां कामिनां मदनदूतिमुदाहरन्ति (विक्रमो०) ।
अभ्यव+हृ (खाना) सक्तून् पिब धानाः खादेत्यभ्यवहरति (पा० अष्टाध्यायी) ।
परि+हृ (छोड़ना) स्त्रीसन्निकर्षं परिहर्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः (कुमा।०)
उप+हृ (भेंट देना) देवेभ्यः बलिमुपहरेत् ।
प्र+हृ (मारना) कृष्णः कंसं शिरसि प्राहरत् ।
वि+हृ (क्रीड़ा करना) विहरति हरिरिह सरसवसन्ते । (गीतगोविन्दे)
स कदाचिदवेक्षितप्रजः सह देव्या विजहार सुप्रजः (रघुवंशे) ।
सम्+हृ (पीछे हटाना) न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः । (हितो०) ।
सं+हृ (रोकना) क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत्स वह्निर्भवने त्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार (कुमारसंभवे) ।

क्रम् (चलना)—

अति+क्रम् (गुजरना) यथा यथा यौवनमतिचक्राम (कादम्बर्याम्) ।
, (उल्लङ्घन करना) कथमतिक्रान्तमगस्त्याश्रमपदम् (महावीरचरिते) ।
अप+क्रम् (दूर हटना) नगरादपक्रान्तः (मुद्राराक्षसे) ।
आ+क्रम् (आक्रमण करना) पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी (रघुवंशे)

निस्+क्रम् (निकलना) इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।
उप+क्रम्(आरंभ करना)राज्ञस्तस्याज्ञया देवी वसिष्ठमुपचक्रमे(भट्टिकाव्ये)।
परि+क्रम् (परिक्रमा करना) स परिक्रामति ।
वि+क्रम् (विक्रम दिखाना) विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे ।
सम्+क्रम्(संक्रमण करना)क्रालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते।
(रघुवंशे) ।

द्रु (पिघलाना) द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः (मालतीमाधवे) ।
उप+द्रु (आक्रमण करना) प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् (महाभारते) ।
वि+द्रु (भागना) जलसङ्घात इवासि विद्रुतः (कुमारसम्भवे) ।

क्षिप्(फेंकना) किं कूर्मस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत् (मुद्राराक्षसे) ।
अव+क्षिप् (निन्दा करना) मदलेखामवक्षिप्य (कादम्बर्याम्) ।
आ+क्षिप् (अपमान करना) अरेरे राधागर्भभारभूत ! किमेवमाक्षिपसि ।
(वेणीसंहारे)
उत्+क्षिप् (ऊपर फेंकना) बलिमाकाश उत्क्षिपेत् (मनुस्मृतौ) ।
सम्+क्षिप्(संक्षिप्तकरना)संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा(मेघ०)।

बन्ध् (बाँधना, पहनना) न हि चूड़ामणिः पादे प्रभवामीति बध्यते (पञ्चतन्त्रे) ।
उत्+बन्ध् (बाँधना) पादपे आत्मानमुद्बध्य व्यापादयामि (रत्नावल्याम्) ।
निर्+बन्ध् (जोरदार माँग करना) निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्वम् (रघुवंशे) ।
सम्+बन्ध् (मेल होना) सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः (रघुवंशे) ।

रुध् (ढाँकना)—
अनु+रुध्(आज्ञा मानना)अनुरुध्यस्व भगवती वसिष्ठस्यादेशम्(उत्तररामचरिते)।
वि+रुध् (विरोध करना) विपरीतार्थधीर्यस्मात् विरुद्धमतिकृन्मतम् ।

संस्कृत में अनुवाद करो---

१—इस बरतन में एक प्रस्थ चावल समा सकते हैं।* २—प्रयाग में यमुना गङ्गा से मिलती है (सम्+गम्+परस्मै०) । ३—लङ्का से लौटते हुए राम को लिवा लाने के लिये (प्रति+उद्+गम्) भरत आगे बढ़ा। ४—दुष्यन्त ने देखा कि

*इदं भाजनं तण्डुलप्रस्थं सम्भवति ।